Saptarang rajya (durg, kosh, dand, Mitra)

4. दुर्ग : राज्य का चौथा प्रमुख अंग दुर्ग है, जिसे किला भी कहा जाता है। यह ब्राह्य आक्रमण से संरक्षण का एक प्राकृतिक व कृत्रिम उपायहोता है। कौटिल्य की सप्ताङ्ग परिभाषा में दुर्ग का अभिप्राय है— राजधानी। उन्होंने दुर्ग निर्माण तथा उसकी सीमा के अन्दर बनाए जाने वाले भवन आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। जहाँ अन्न, ईधन, नमक, पानी, बारूद आदि की पूर्ण व्यवस्था की जाती थी, ताकि आक्रमण करने या आक्रमण होने पर अपनी सुरक्षा की जा सके। इसके लिए अर्थशास्त्र में चार प्रकार के दुर्ग मिलते हैं- (1) औदिक दुर्ग, (2) पार्वत दुर्ग, (3) धान्वन दुर्ग, (4) वन दुर्ग। इनमें औदिक और पर्वत दुर्ग शत्रु पर प्रत्यक्ष आक्रमण करने हेतु होते थे अर्थात् इनमें राजा और प्रजा दोनों की रक्षा होती थी। धान्वन और वन दुर्ग शत्रु से छिपने का स्थान था, जहाँ राजा की अप्रत्यक्ष रूप से रक्षा होती थी।

अत: राज्य और राजा की सुरक्षा हेतु दुर्ग का विशेष महत्व था। महाभारत के शन्ति पर्व के अनुसार राजा को छ प्रकार के दुर्गों का आश्रय लेकर निवास करना चाहिए - धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, मनुष्य दुर्ग, जल-दुर्ग और वन दुर्ग"। इनमे धन्व दुर्ग के चारों ओर बालू मिट्टी का घेरा होता है। जो पर्वत मालाओं से घिरा हुआ है वह मही दुर्ग। जिसके चारों ओर जल हो वह जल-दुर्ग। जिसके चारों ओर कांटे-वांस आदि हो वह वन दुर्ग तथाफौजी किले का नाम मनुष्य दुर्ग है। यहाँ दुर्गाधिकारी की नियुक्ति ऐसे व्यक्ति की करनी चाहिए, जो युद्धादि में निपुण हो। कौटिल्य का मत है कि दुर्ग को सुविधानुसार छोटे-छोटे भागों में बाँटना चाहिए, मुख्य रूप से इसे चार भागों में बांटना चाहिए तथा हर भाग में एक कर्मचारी की नियुक्ति करनी चाहिए, जिन्हें स्थानिक नाम से भी सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार कौटिल्य ने दुर्ग में एक व्यवस्थित शासन की स्थापना की।

5. कोष (कोश) : कौटिल्य के अनुसार राज्य संचालन के कार्यों का आधार कोष होता है, इसलिए राजा को राज्य संचालन के लिए कोष पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। उनके अनुसार राजकोष की व्यवस्थाऐसी होनी चाहिए, इसमें पूर्वज राजाओं के साथ-साथ अपने द्वारा संचित की गई आय भी हो। जिसमें धन, स्वर्ण, चाँदी, बहुमुल्य रत्न आदि होने चाहिए, जिससे आपत्ति पड़ने पर प्रजा की रक्षा में समर्थ हो सके। इसलिए राजा को इसके विवर्धन का प्रयास करते रहना चाहिए, क्योंकि कोष से ही राजा को सेना तथा भूमि प्राप्त होती है।" महाभारत के शान्तिपर्व के अनुसार जिस प्रकार पर्वत से नदियाँ बहती है, उसी प्रकार धन से सब शुभ कार्मों का अनुष्ठान होता है।" कौटिल्य ने कोष वृद्धि के नौ मूल आधार बताए है-

1-प्रचार समृद्धि : जब राज्य के निवासी सम्पन्न व्यक्ति हो, क्योंकि वे राजकोष की वृद्धि के लिए धन देने में समर्थ होते

2. चरित्रानुग्रह : राज्य के निवासियों का आचरण शुद्ध होना चाहिए, ताकि समय पर कर प्राप्ति हो सके।

3. चोर निग्रह : चोरों का दमन करने की आवश्यकता होती है,ताकि कोष को नुकसान न हो।

4. युक्त प्रतिषेध : पर्याप्त से अधिक राजकर्मचारियों की नियुक्ति पर प्रतिषेध करना चाहिए।

5-सस्य सम्पति : राज्य शस्य यानि अन संपति से सम्पत्र हो। जिससे व्यापार में भी निरन्तर वृद्धि हो।

6. उपसर्ग प्रमोक्ष : धन-जन विनाश करने वाली बाह्य व आन्तरिक आपदाओं से राज्य को मुक्त रखना।

7. परिहारक्षय : प्रजा को ऋण धीरे-धीरे राज्य को पुन: वापस कर देना चाहिए।

8. हिरण्योपायनम् : राजा को सदैव सोने का संग्रह करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

इस प्रकार कौटिल्य ने विस्तार पूर्वक कोष वृद्धि के उपाय बताए हैं, इसके साथ-साथ कोष-क्षय के भी आठ कारणों का भी उल्लेख किया है।इन उपायों से ही राजा अपने कोष वृद्धि कर प्रजापालन करने में सक्षम बनता है। परन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि राजा को यह धन धर्म पूर्वक ग्रहण करना चाहिए न कि प्रजा को पीड़ा देकर।

6. दण्ड : राज्य के सात अंगों में सेना और बल को विशिष्ट स्थान प्राप्त है, कौटिल्य ने इसे ही दण्ड कहा है। उन्होंने इसे शक्ति

नाम से सम्बोधित किया है और तीन प्रकार की शक्ति मानी है (1) मंत्र शक्ति (2) प्रभु शक्ति (3) उत्साह शक्ति। (ज्ञानबलं मत्रशक्ति) यहाँ ज्ञान बल को मंत्र शक्ति, सैन्य बल को प्रभु शक्ति तथा विक्रम या वीरता को उत्साह शक्ति माना है। इन तीनों बलों से हीन राजा दुर्बल राजा होता है। कौटिल्य का दण्ड से अभिप्राय-सैन्य बल से है। शुक्राचार्य ने दण्ड के स्थान पर बल शब्द का ही प्रयोग किया है। कामन्दक ने भी बल शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ बल से अभिप्राय है- सेना। अर्थशास्त्र के अनुसार सेना ऐसी होनी चाहिए, जो वंशानुगत होने के साथ-साथ स्थाई तथा राजा के अधीन रहने वाली हो। इसके साथ-साथ सैनिकों का परिवार भी सन्तुष्ट होना चाहिए। राजा को अपनी सेना में कुशल सैनिकों का चयन करनाचाहिए। इसीलिए कहा है कि क्षत्रियों की सेना दण्ड सम्पन्न होनी है। क्षत्रपाय इति दण्डसम्पत्

इस प्रकार अर्थशास्त्र में दण्ड का प्रयोग राजा की शक्ति को मजबूत रखने के लिए हुआ है। महाभारत में पाण्डव कहते हैं कि वे साम, दाम और भेद से राज्य को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अन्यथा अन्तिम रूप से युद्ध (दण्ड) ही उनका प्रधान कर्तव्य होगा। कौटिल्य के अनुसार सेना छ: प्रकार की होती हैबल, भृत बल, श्रेणी बल, शत्रु बल, मित्र बल औरअटवी बल। इस प्रकार कौटिल्य ने दण्ड व्यवस्था को राजसत्ता के महत्वपूर्ण अंगके रूप में स्वीकार करते हुए राजा हेतु अनुशासन युक्त बल की कामना की।

7. मित्र : राज्य के सात महत्वपूर्ण अंगों में मित्र को भी महत्वपूर्ण अंग माना है। प्राचीन भारतीय राजशास्त्रियों केअनुसारजैसे के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही बिना मित्र के राज्यों की कल्पना असम्भव है। इस पक्ष को आधुनिक राजनीतिज्ञ भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि एक आदर्श राजा सदैव अपने मित्रों के साथ होता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह उनसे सहायता ले सके तथा उनको आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता कर सके। प्राचीन राजनैतिक प्रणली में "मात्स्य न्याय' का सिद्धान्त अपनाया जाता था अर्थात् जिस प्रकार छोटी मछली बड़ी मछली को खा जाती है, उसी प्रकार बड़े राज्य भी छोटे राज्यों का दमन करते थे। इस स्वाभाविक स्थिति से मुक्ति हेतु एक राज्य दूसरे राज्य की सहायता करता था अर्थात् वे आपस में मित्रवत् संबंध रखते थे। इसी सिद्धान्त को "मण्डल-सिद्धान्त' नाम दिया गया। यह सिद्धान्त राज्यों में शक्ति सन्तुलन का कार्य करता था, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर एक राज्य अपने मित्र राज्य की सहायता करता। इसी कारण कहीं-कहीं मित्र के लिए सुहृत शब्द का भी प्रयोग मिलता है। कौटिल्य ने तीन प्रकार के मित्र माने है- प्रकृति मित्र, सहज मित्र और कृत्रिम मित्र। शत्रु राज्य की सीमा से लगे राज्य, तथा अपनी सीमा सेलगे राज्यों को कौटिल्य ने 'प्रकृति मित्र' की संज्ञा दी है। माता-पिता से सम्बन्धित राजा को 'सहज मित्र' तथा धन और जीवन की रक्षा के लिए किसी अन्य राजा का आश्रय लेने को 'कृत्रिम मित्र' माना है। इसी प्रकार महाभारत में भी चार प्रकार के मित्रों का उल्लेख है-

सहार्थ : जो शर्त पर एक दूसरे की सहायता के लिए मित्र बने।

भजमान : जो परम्परागत वंश संबंध से मित्र हो।

सहज : जो जन्म से या विद्या अध्ययन से घनिष्ठ मित्र बन गए हो।

कृत्रिम : जीवन रक्षा या आश्रय हेतु जो मित्र बन गया हो।

यहाँ भीष्मपितामह ने सहज और भजमान मित्र को श्रेष्ठ श्रेणी में रखा है। शेष दोनों से राजा को सदैव सचेत रहना चाहिए। अत: राजा को वंशपरम्परागत, स्थायी और अपने वश में रहने वाले विद्वान, सम्पन्न व्यक्ति, जिससे विरोध की सम्भावना न हो तथा जो प्रभु शक्ति, मंत्र शक्ति और उत्साह शक्ति से सम्पन्न हो ऐसे व्यक्ति को मित्र बनाना चाहिए।

निष्कर्ष : उपर्युक्त समस्त समीक्षा से पता चलता है कि राज्य के लिए किसी एक साधन की ही आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस प्रकार शरीर के सम्पूर्ण अंग मिलकर ही कार्य संपादन कर सकते हैं, किसी भी एक अंग के अभाव की स्थिति में व्यक्ति विकलांग कहलाता है या कोई भी एक अवयव अलग होने पर उसका कोई महत्व नहीं रहता, उसी प्रकार राज्य के भी ये सात अंग हैं। जिनका अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान है तथा इनके आपसी सहयोग से ही राज्य को स्थाई अस्तित्व प्राप्त होता है। इन्हीं से राज्य का सम्पूर्ण कार्य सुचारू रूप से चलता है।

कौटिल्य के अनुसार राजा इसका महत्वपूर्ण स्तम्भ है, क्योंकि राजा द्वारा ही अन्य लोगों को स्वस्थ रखने का कार्य किया जाता है। अगर राजा श्रेष्ठ गुणों से युक्त नहीं होगा, तो राज्य का संचालन भी उचित प्रकार से नहीं हो सकेगा। यदि राजा ही गुणों से युक्त न हो तथा अन्य अंग स्वस्थ हो तो ऐसा राज्य नहीं चल सकेगा। इसीलिए कौटिल्य ने स्वयं राजा को ही राज्य माना है। परन्तु उन्होंने अन्य अंगों को भी उतना ही महत्वपूर्ण माना है। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने किसी न किसी रूप में इन सप्त अंगों की चर्चा की है, परन्तु कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के माध्यम से सर्वप्रथम इन्हें जीवन्त रूप प्रदान किया। अत: कौटिल्य ने इन सभी अंगों पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए इनके महत्व को स्पष्ट किया है।

Lecture by-Dr. Ritu Mishra

Department of Sanskrit

Shivaji college.